नियमसार, गाथा ११८। फिर से। थोड़ा चला है।

टीका : यहाँ (इस गाथा में), प्रसिद्ध शुद्धकारणपरमात्मतत्त्व में... आहाहा! यह कारणपरमात्मा जो आत्मा, वही प्रसिद्ध है, कहते हैं। दूसरे को जानते हुए भी स्वयं ज्ञात होता है; दूसरा ज्ञात नहीं होता। इस प्रकार कारणपरमात्मा प्रसिद्ध है। आहाहा! **प्रसिद्ध शुद्धकारणपरमात्मतत्त्व में सदा अन्तर्मुख रहकर...** उसका स्वरूप परम कारणपरमात्मा में अन्तर्मुख रहकर जो प्रतपन, अन्तर्मुख रहकर **जो प्रतपन...** उसे तप कहते हैं। लो, यह तप.. **प्रसिद्ध शुद्धकारणपरमात्मतत्त्व में सदा अन्तर्मुख रहकर...** आहाहा! **जो प्रतपन...** उसमें एकाग्रता की शुद्धता, वह तप है। आहाहा! वह प्रायश्चित है। आहाहा! क्रियाकाण्ड की सब बात निकाल डाली। एक स्वद्रव्य का आश्रय करके एकाग्र हो, वही प्रायश्चित कहा जाता है, धर्म कहा जाता है। **ऐसा कहा है।** यहाँ तक आया था।

अब, **अनादि संसार से ही उपार्जित द्रव्यभावात्मक शुभाशुभ कर्मों का...** द्रव्यकर्म और भावकर्म, ऐसे शुभ और अशुभकर्मों का समूह। आहाहा! **अनादि संसार से ही उपार्जित...** ऐसा कहते हैं... प्रवाहरूप से अनादि है न? कर्म तो सत्तर कोड़ाकोड़ी का है। वह अनादि का नहीं होता, परंतु कर्म की परम्परा ऐसी की ऐसी चली आती है। इसलिए **अनादि संसार से ही उपार्जित द्रव्यभावात्मक शुभाशुभ कर्मों का समूह—कि जो पाँच**

प्रकार के (-पाँच परावर्तनरूप) संसार का संवर्धन करने में समर्थ है... द्रव्य-क्षेत्र-काल-भव और भाव—ऐसे पाँच प्रकार के परावर्तन करने में समर्थ है। आहाहा! शुभभाव, वह भी पाँच प्रकार के संसार में संवर्धन करने का कारण है। शुभभाव से कहीं आत्मा में लाभ हो, ऐसा नहीं कहा।

वह—भावशुद्धि लक्षण... भावशुद्धि अर्थात् शुभाशुभरहित। **(-भावशुद्धि जिसका लक्षण है ऐसे) परमतपश्चरण से विलय को प्राप्त होता है;...** आहाहा! पाँच प्रकार के परिभ्रमण, वे इस शुद्धभाव से... है न? **(-भावशुद्धि जिसका लक्षण है ऐसे) परमतपश्चरण से विलय को प्राप्त होता है;...** शुद्धभाव; शुभ-अशुभभाव रहित। दया, दान, व्रत, भक्ति, तप आदि के शुभपरिणाम, वह बन्ध के कारण हैं। उनसे रहित जो शुद्धपरावर्तन... आहाहा! **परमतपश्चरण से विलय को प्राप्त होता है;...** पाँच परावर्तन उसमें नाश को प्राप्त होते हैं। आहाहा!

इसलिए स्वात्मानुष्ठाननिष्ठ (-निज आत्मा के आचरण में लीन)... आहाहा! नियमसार में कितनी ही बात तो समयसार से भी उत्कृष्ट कर डाली है। **(-निज आत्मा के आचरण में...)** भगवान आत्मा नित्यानन्द प्रभु, अनादि-अनन्त शाश्वत्—ऐसा निज परमातमा, उसके आचरण में लीन। आहाहा! परम-तपश्चरण। उसे **परमतपश्चरण ही शुद्धनिश्चयप्रायश्चित्त है...** आहाहा! भगवान परमानन्द परमपारिणामिकस्वभाव, त्रिकाल कारणस्वभाव में लीनता... आहाहा! वही शुभाशुभभाव के परावर्तन के नाश का कारण है। शुभ के नाश का कारण वह है। (शुभभाव) अपनी शान्ति को नाश करते हैं। यह शान्ति, शुभ को नाश करती है। आहाहा! **(-निज आत्मा के आचरण में लीन) परमतपश्चरण...** यह परम तपस्या है। आहाहा!

मुमुक्षु : यह परमतपश्चरण है तो इससे हल्का कोई तपश्चरण होगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : परमतपश्चरण ही यह है। हल्का तप... नाममात्र दे अनशन, ऊनोदर... वस्तु ही यह है। परम में और नीचे कोई दूसरा है, ऐसा नहीं है। यही परमतपश्चरण है। 'ही', देखो! आत्मा में आचरण की लीनता, वही परमतपश्चरण है। **शुद्धनिश्चय-प्रायश्चित्त है, ऐसा कहा गया है।** आहाहा! एक-एक श्लोक में बारह अंग का सार भर दिया है।

मुमुक्षु : जघन्य तप श्रावक को, उत्कृष्ट तप मुनि को।

पूज्य गुरुदेवश्री : दूसरा तप ही नहीं है। यह एक ही तप है। आत्मा आनन्दमूर्ति कारणपरमात्मा में लीनता, वह एक ही तप है। एक ही परम तप है।

मूमुक्षु : आत्मा में लीनता तो.... होवे न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : ...शुभपरिणाम हो, वह बन्ध का कारण है, संसार है। आहाहा! नियमसार की कितनी ही व्याख्या समयसार से भी बहुत ऊँची है। टीकाकार आचार्य ने अन्तर में से निकाल कर देखा। उसे तपस्या कहकर ऐसा कहते हैं। आत्मा के आनन्द के अनुभव में आनन्द की उग्रता वेदन करे, अतीन्द्रिय आनन्द की उग्रता (का वेदन करे) उसे परमतपश्चर्या कहते हैं। आहाहा! लीनता नहीं हुई... आहाहा! ऐसी बातें हैं। लोग फिर एकान्त कहते हैं। आहाहा!

श्लोक-१८९

[अब इस ११८वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं:]

(मंदाक्रांता)

प्रायश्चित्तं न पुन-रपरं कर्म कर्म-क्षयार्थं,
प्राहुः सन्तस्तप इति चिदानन्द-पीयूष-पूर्णम्।
आसन्सारा-दुपचित-महत्कर्मकान्तारवह्नि-
ज्वालाजालं शमसुखमयं प्राभृतं मोक्षलक्ष्म्याः ।।१८९।।

(वीरछन्द)

कर्मों की अटवी अनादि भव-परम्परा से पुष्ट महान।
उसे जलाने हेतु अग्नि की ज्वाला-सम तप शम सुखखान॥
मुक्ति-वधू को भेंट, चिदानन्द अमृत रस से है भरपूर।
यही कर्मनाशक प्रायश्चित सन्त कहें नहिं कोई और॥१८९॥

[श्लोकार्थः] जो (तप) अनादि संसार से समृद्ध हुई कर्मों की महा अटवी को जला देने के लिए अग्नि की ज्वाला के समूह समान है, शमसुखमय है और मोक्षलक्ष्मी के लिए भेंट है, उस चिदानंदरूपी अमृत से भरे हुए तप को सन्त कर्मक्षय करनेवाला प्रायश्चित्त कहते हैं, परन्तु अन्य किसी कार्य को नहीं॥१८९॥

श्लोक- १८९ पर प्रवचन

[अब इस ११८वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैंः]

प्रायश्चित्तं न पुन-रपरं कर्म कर्म-क्षयार्थं,
प्राहुः सन्तस्तप इति चिदानन्द-पीयूष-पूर्णम्।
आसन्सारा-दुपचित-महत्कर्मकान्तारवह्नि-
ज्वालाजालं शमसुखमयं प्राभृतं मोक्षलक्ष्म्याः ।।१८९।।

[श्लोकार्थः] आहाहा! **जो (तप) अनादि संसार से समृद्ध हुई कर्मों की महा अटवी...** आहाहा! कर्म की महा अटवी। आहाहा! जंगल। अनादि काल से पुण्य और पाप... पुण्य और पाप... पुण्य और पाप... पुण्य तो किसी समय होता है, बाकी तो पाप और पाप पूरे दिन। आहाहा!

मुमुक्षु : उसके साथ मिथ्यात्व का पाप सेवन किया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : मिथ्यात्व का पाप ही सेवन किया करता है। धर्म के नाम से मिथ्यात्व का (पाप सेवन करता है) क्रियाकाण्ड करे और माने कि मुझे धर्म हुआ। आहाहा!

जो (तप) अनादि संसार से समृद्ध हुई कर्मों की महा अटवी को जला देने के लिए अग्नि की ज्वाला के समूह समान है,... आहाहा! जो संसार अशुद्ध भाव, उसके अन्तर्भेद शुभाशुभ दोनों, वह संसार की वृद्धि का कारण है। उसे नाश करने के लिये चैतन्य की अन्तरलीनता, शुद्ध परमपारिणामिकभाव की लीनता, वह उसका नाश कर डालती है। बाकी दूसरा कोई उपाय नहीं है। आहाहा! ऐसी बात है। (अग्नि की) **ज्वाला के समूह समान है, शमसुखमय है...** आहाहा! कौन? तप। वह यह तप। अन्तर आनन्दस्वरूप में मग्न-लीनता। अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप में लवलीन। अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ आत्मा...

वही कर्म की अटवी को जला डालने के लिये अग्नि की ज्वाला के समूह समान है। आहाहा!

यहाँ तो एक अपवास करे तो ऐसा हो, एक अपवास... तीन करे तो ऐसा हो।... मिथ्यात्व का पाप है। पुण्य को धर्म मानता है। हम धर्म करते हैं। मिथ्यात्व है। संसार है। यह बलुभाई ने किया है न। कहाँ नहीं किया?

मुमुक्षु : बलुभाई को खबर पड़ी न कि हमने क्या किया?

पूज्य गुरुदेवश्री : उसमें कुछ पुण्य बँधेगा? ऐसा कहते हैं। पाप बँधेगा।

मुमुक्षु : मिथ्यात्व का पाप है।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसे स्वयं धर्म मानता है न! वास्तव में तो मिथ्यात्व बढ़ गया। शुभभाव अन्दर है, परन्तु वह तो कहीं गौण रह गया। मिथ्यात्व के पाप की वृद्धि हो गयी। आहाहा! चैतन्यमूर्ति आनन्दनाथ के ओर की सन्मुखता छोड़कर बाहर में सन्मुखता में रहनेवाला अकेला मिथ्यात्व बाँधता है। आहाहा! सूक्ष्म बात है।

स्वरूप अन्दर भगवान आत्मा परम आनन्द का सागर, परम अतीन्द्रिय ज्ञान और शान्ति का सागर है, समुद्र है। पुण्य और पाप के झुकाव से छूटकर उसमें लीन होना, वह संसार के नाश होने का उपाय है; दूसरा कोई उपाय नहीं है। आहाहा! **शमसुखमय है...** वह समता सुखमय है। समतावाला सुखमय है। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द का सागर आत्मा, उसमें लीनता, वह शमसुखमय है। आहाहा! उसका नाम तपश्चर्या कहलाती है, उसका नाम प्रायश्चित्त कहलाता है। आहाहा!

शमसुखमय है... वह शमसुखमय है। समतावाला सुख है, वीतरागभाववाला सुख है। आहाहा! क्योंकि आत्मा वीतरागमूर्ति... कल शाम को नहीं कहा था? 'घट घट अन्तर जिन बसै अरु घट-घट अन्तर जैन; मत मदिरा के पान सौं मतवाला समझै न।' 'घट घट अन्तर जिन बसै...' जिन है। आत्मा तो जिनस्वरूप ही विराजमान है और उसका भान करनेवाला 'घट-घट अन्तर जैन बसै' वह घट में जैनपना आता है। उस 'जिन' का भान होने पर... यह भी कभी सुना नहीं होगा। आत्मा जिन है। जिन तो होगा, तब होगा। वीतराग। यह तो वीतराग तो पर्याय में होगा, तब होगा। पर्याय हुई कहाँ से? वह जिनस्वरूप ही, वीतरागस्वरूप ही है। आहाहा! जिनस्वरूप 'घट घट अन्तर जिन बसै...' घट-घट

अन्तर भगवान बसता है और उसकी सन्मुख की आनन्द की दशा, वह जैनदशा; वह जिन की जैनदशा। वह कोई बाड़ा नहीं, पक्ष नहीं; वह अन्तर की बातें हैं।

यहाँ कहते हैं **शमसुखमय है...** आहाहा! कौन? **कर्मों की महा अटवी को जला देने के लिए अग्नि की ज्वाला के समूह समान है, शमसुखमय है...** समतावाला सुख है। उससे उन कर्मों का नाश होता है। समता आत्मा के वीतराग तत्त्व को पकड़कर समता होती है वह। अकेली बाहर की क्षमा रखे, वह तो पुण्य का कारण, संसार में भटकने का कारण है। यह देश के लिये मरते हैं न? क्या कहलाता है? शहीद होते हैं। मरे हैं न? बहुत मरे हैं। सब चार गति में भटकनेवाले हैं। कठिन बात है। एक प्रभु चैतन्यमूर्ति आनन्द का सागर, उसका अवलम्बन करके जो निर्मल दशा होती है, वह धर्म और वह मुक्ति का मार्ग है। बाकी सब बातें हैं। आहाहा!

और मोक्षलक्ष्मी के लिए भेंट है,... आहाहा! क्या? तप। कैसा तप? जो शमसुखमय शान्तिवाला है। वीतरागी पर्याय आनन्द के साथ आती है, वह **मोक्षलक्ष्मी के लिए भेंट है,...** अब मोक्षलक्ष्मी अल्प काल में है, उसकी भेंट होती है। आहाहा! भवभ्रमण का अन्त अब है और मोक्षलक्ष्मी की भेंट है। आहाहा! शब्द ऐसे प्रयोग किये हैं। **उस चिदानंदरूपी अमृत से भरे हुए तप को...** अब यह तप। ऐसा तप होता है, यह कहते हैं। उस तप में ज्ञानानन्दरूपी अमृत से भरा हुआ होता है। कहो, बलुभाई! क्या? जिस तप में चिदानन्द ज्ञानानन्द अतीन्द्रिय आनन्दमूर्ति अमृत से भरपूर... आहाहा! उसे तप कहते हैं। बाकी सब लंघन है। आहाहा!

क्या कहा? **चिदानंदरूपी अमृत से भरे हुए तप को सन्त कर्मक्षय करनेवाला प्रायश्चित्त कहते हैं,...** आहाहा! तीर्थंकर, गणधर और मुनिराज उस ज्ञानानन्दरूपी अमृत से भरपूर... आहाहा! ज्ञानरूपी आत्मा का अमृतरूपी आनन्द, उससे भरपूर तप। आहाहा! **चिदानंदरूपी अमृत से भरे हुए तप...** आहाहा! ज्ञानानन्द। अन्तर ज्ञानानन्दस्वरूप है, उसका अवलम्बन करके **चिदानंदरूपी अमृत से भरे हुए...** आहाहा! उसे तप कहते हैं। आहाहा! उसमें है न? वहाँ पढ़ा कब था?

चिदानंदरूपी अमृत से भरे हुए तप को सन्त... तीर्थंकर, मुनि **कर्मक्षय करनेवाला प्रायश्चित्त कहते हैं,...** आहाहा! उसे कर्म का नाश करनेवाला प्रायश्चित्त कहते हैं।

उपवास करे, वह प्रायश्चित्त है, तप है; तप है, वह निर्जरा है - ऐसा नहीं है। आहाहा! बारह प्रकार के तप करे... एक आर्यिका कहती थी। यह सब दूसरी बात परन्तु तपस्या तो यह अपवास करना यह अनशन और यह तप है। दूसरे के साथ बात हुई थी। दूसरा भले चाहे जैसे यह कहे परन्तु तपस्या और अनशन, ऊनोदर यह तपस्या है और एक अपवास करना वह तपस्या है। तपस्या है, वह निर्जरा है। आहाहा! एक अपवास करने से निर्जरा हो जाएगी? तेरा समय चला जाएगा। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं **चिदानंदरूपी अमृत से भरे हुए तप को...** आत्मा के आनन्द के ज्ञान से भरपूर तप, उस तप को तप कहते हैं। आहाहा! एकासन करे, इसलिए मानो तप हो गया... अठ्ठम करे, आठ दिन का निर्जल-पानी पीये बिना अपवास करे। बहुत तपस्या करे।

मुमुक्षु : ऊपर वापस पोर चढ़ावे।

पूज्य गुरुदेवश्री : पोर चढ़ावे अधिक। ....यह तो ठीक परन्तु... करे। महीने के अपवास करे। आहाहा! अपवास करे और फिर अन्त में जरा सोंठ चोपड़े। अठ्ठम करनी पड़े, तब वर्षीतप में अन्त में, बाहर पड़े तो सब इकट्ठे होकर गाना गाये। फिर प्रभावना बाँटे। हो गया तप। आहाहा! मूर्खता से भरपूर तप है। जिसमें चिदानन्द ज्ञानानन्द का रस आया नहीं, जिसमें चिदानन्द ज्ञान के आनन्द का रस आया नहीं, वह तप नहीं है। आहाहा! बहुत स्पष्ट बात है। आहाहा!

वस्तु है न? वस्तु है, वह स्वयं दूसरे को बतलाती है कि यह... यह... यह... वह जाननेवाला तत्त्व स्वयं ही स्वतन्त्र पर से भिन्न है। ऐसा जाननेवाला तत्त्व, उसे ज्ञायकभावरूप से जानकर आनन्द में रहना, अतीन्द्रिय आनन्द में लीनता (करना), वह कर्मक्षय का कारण सन्त कहते हैं और उसे कर्मक्षय का कारण तपस्या कहते हैं। आहाहा! ...आता है न? कषाय...

मुमुक्षु : विषयकषाया....

पूज्य गुरुदेवश्री : कषायविषयाहारो त्यागे यत्र विधियते।
उपवास सः विज्ञेयः लंघनकं बिदुः॥

आहाहा! विषयकषाया... आहाहा!

जिसमें राग के विकल्प का नाश (होता है) और जिसमें आत्मा आनन्द का नाथ

ऐसा निर्विकल्प प्रभु है, उसका जो आनन्द का रस, वह चिदानन्द रस (उत्पन्न होता है), उसे यहाँ तप कहा जाता है। चिदानन्द के रस को तप कहा जाता है। आहाहा! है? **चिदानंदरूपी अमृत से भरे हुए...** आहाहा!

मुमुक्षु : वह अपवास तो जहर से भरा हुआ।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो अमृत से भरपूर है। आहाहा!

चिदानंदरूपी अमृत से भरे हुए तप को सन्त कर्मक्षय करनेवाला प्रायश्चित्त कहते हैं,... अब अस्ति-नास्ति करते हैं **परन्तु अन्य किसी कार्य को नहीं।** इसके अतिरिक्त किसी भी कार्य से वह कर्मक्षय हो, यह तीन काल में नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु : एक ही पद्धति।

पूज्य गुरुदेवश्री : एक ही बात।

परमानन्द का नाथ चिदानन्द प्रभु, 'घट-घट अन्तर जिन बसै अरु घट-घट अन्तर जैन, मत मदिरा के पान सौ...' परन्तु अपने मत की शराब पीये हो, उसके कारण आगे चलता नहीं है। 'मतवाला समझे न।' मतवाला मद, पागल-पागल हो गया है। आहाहा! वह समझता नहीं कि यह आत्मा अन्दर भिन्न है, इसका ज्ञान और आनन्द करना, वह धर्म है। आहाहा! 'मतवाला समझे न।' 'मत मदिरा...' मत अर्थात् अपने पक्ष का अभिमान और अपने पक्ष को पकड़ा, पक्ष को सिद्ध करने का प्रयास करता है। आहाहा!

परन्तु अन्य किसी कार्य को नहीं। चिदानन्दरूपी अमृत से भरे हुए को तप कहना। इसके अतिरिक्त किसी को तप और क्रियाचारित्र कहना नहीं। आहाहा! ऐसी बात है। लोगों को कठिन लगता है। बेचारों को सुनने को मिलता नहीं। क्या करे? पूरे दिन संसार की मजदूरी करे। निवृत्त हो तो एक घण्टे सुनने जाए, वहाँ पाप की बातें करे। यह तपस्या करो, यह अपवास करो, यह करो... यह करो... यह करो...

यहाँ तो कहते हैं कि चिदानन्द ज्ञान भगवान नित्यानन्द प्रभु के अमृत से भरपूर भाव, चिदानन्द का अमृत से भरपूर भाव... आहाहा! वह तप है और वह तप करने की बात है। आहाहा! बारह भेद है, तब वह क्या है? अनशन, ऊनोदर, वृत्तिपरिसंख्यान... क्या है? अभ्यन्तर तप वह मुनि... इसके बिना की सब बातें बिना इकाई के शून्य है। आहाहा!

गाथा - ११९

अप्पसरूवालंबणभावेण दु सव्वभावपरिहारं।
सक्कदि कादुं जीवो तम्हा झाणं हवे सव्वं।।११९।।

आत्मस्वरूपालम्बनभावेन तु सर्वभावपरिहारम्।
शक्नोति कर्तुं जीवस्तस्माद् ध्यानं भवेत् सर्वम्।।११९।।

अत्र सकलभावानामभावं कर्तुं स्वात्माश्रयनिश्चयधर्मध्यानमेव समर्थमित्युक्तम्।

अखिलपरद्रव्यपरित्यागलक्षणलक्षिताक्षुण्णनित्यनिरावरणसहजपरमपारिणामिकभाव-भावनया भावान्तराणां चतुर्णामौदयिकौपशमिकक्षायिकक्षायोपशमिकानां परिहारं कर्तुमत्या-सन्नभव्यजीवः समर्थो यस्मात्, तत एव पापाटवीपावक इत्युक्तम्। अतः पञ्चमहाव्रतपञ्च-समितित्रिगुप्ति-प्रत्याख्यानप्रायश्चित्तालोचनादिकं सर्वं ध्यानमेवेति।

शुद्धात्म आश्रित भाव से सब भाव का परिहार रे।
यह जीव कर सकता अतः सर्वस्व है वह ध्यान रे॥११९॥

अन्वयार्थ : [आत्मस्वरूपालम्बनभावेन तु] आत्मस्वरूप जिसका आलम्बन है ऐसे भाव से [जीवः] जीव [सर्वभावपरिहारं] सर्व भावों का परिहार [कर्तुम् शक्नोति] कर सकता है, [तस्मात्] इसलिए [ध्यानम्] ध्यान वह [सर्वम् भवेत्] सर्वस्व है।

टीका : यहाँ (इस गाथा में), निज आत्मा जिसका आश्रय है, ऐसा निश्चय-धर्मध्यान ही सर्व भावों का अभाव करने में समर्थ है - ऐसा कहा है।

समस्त परद्रव्यों के परित्यागरूप लक्षण से लक्षित अखण्ड-नित्यनिरावरण—सहज-परमपारिणामिकभाव की भावना से औदयिक, औपशमिक, क्षायिक तथा

क्षायोपशमिक इन चार भावान्तरों का *परिहार करने में अति-आसन्नभव्य जीव समर्थ है, इसीलिए उस जीव को पापाटवीपावक (-पापरूपी अटवी को जलानेवाली अग्नि) कहा है; ऐसा होने से पाँच महाव्रत, पाँच समिति, तीन गुप्ति, प्रत्याख्यान, प्रायश्चित्त, आलोचना आदि सब ध्यान ही है (अर्थात् परमपारिणामिकभाव की भावनारूप जो ध्यान, वही महाव्रत, प्रायश्चित्तादि सब कुछ है)।

गाथा - ११९ पर प्रवचन

गाथा ११९।

अप्पसरूवालंबणभावेण दु सव्वभावपरिहारं।
सक्कदि कादुं जीवो तम्हा झाणं हवे सव्वं।।११९।।

शुद्धात्म आश्रित भाव से सब भाव का परिहार रे।
यह जीव कर सकता अतः सर्वस्व है वह ध्यान रे॥११९॥

टीका -... आहाहा! **यहाँ (इस गाथा में), निज आत्मा जिसका आश्रय है...**

---

* यहाँ चार भावों के परिहार में क्षायिकभावरूप शुद्ध पर्याय का भी परिहार (त्याग) करना कहा है, उसका कारण इसप्रकार है : शुद्धात्मद्रव्य का ही-सामान्य का ही-आलम्बन लेने से क्षायिकभावरूप शुद्धपर्याय प्रगट होती है। क्षायिकभाव का-शुद्धपर्याय का-विशेष का-आलम्बन करने से क्षायिकभावरूप शुद्धपर्याय कभी प्रगट नहीं होती। इसलिए क्षायिकभाव का भी आलम्बन त्याज्य है। यह जो क्षायिकभाव के आलम्बन का त्याग, उसे यहाँ क्षायिकभाव का त्याग कहा गया है।

यहाँ ऐसा उपदेश दिया है कि—परद्रव्यों का और परभावों का आलम्बन तो दूर रहा, मोक्षार्थी को अपने औदयिकभावों का (समस्त शुभाशुभ भावादिक का), औपशमिकभावों का (जिसमें कीचड़ नीचे बैठ गया हो, ऐसे जल के समान औपशमिक सम्यक्त्वादिक का), क्षायोपशमिकभावों का (अपूर्ण ज्ञान-दर्शन-चारित्रादि पर्यायों का) तथा क्षायिकभावों का (-क्षायिक सम्यक्त्वादि सर्वथा शुद्ध पर्यायों का) भी आलम्बन छोड़ना चाहिए; मात्र परमपारिणामिकभाव का—शुद्धात्मद्रव्यसामान्य का—आलम्बन लेना चाहिए। उसका आलम्बन लेनेवाला भाव ही महाव्रत, समिति, गुप्ति, प्रतिक्रमण, आलोचना, प्रत्याख्यान, प्रायश्चित्त आदि सब कुछ है। (आत्मस्वरूप का आलम्बन, आत्मस्वरूप का आश्रय, आत्मस्वरूप के प्रति सम्मुखता, आत्मस्वरूप के प्रति झुकाव, आत्मस्वरूप का ध्यान, परमपारिणामिकभाव की भावना, 'मैं ध्रुव शुद्ध आत्मद्रव्यसामान्य हूँ'—ऐसी परिणति-इन सबका एक अर्थ है।)

देखा ? अपना आत्मा। पर का आत्मा भगवान का भी नहीं, पंच परमेष्ठी का आत्मा नहीं। आहाहा! वह परद्रव्य है। परद्रव्य का आश्रय करने जाएगा, वहाँ राग होगा। आहाहा! **निज आत्मा जिसका आश्रय है, ऐसा निश्चय-धर्मध्यान...** देखा ? धर्मध्यान में निश्चय-धर्मध्यान लिया। शुभराग को किसी समय व्यवहार धर्मध्यान कहते हैं। वह नहीं। आहाहा! **निज आत्मा जिसका आश्रय है...** आधार है, अवलम्बन है। **ऐसा निश्चय-धर्मध्यान ही सर्व भावों का अभाव करने में समर्थ है...** संसार में भटकने के सर्व भाव, उनका अभाव करने में समर्थ है, ऐसा कहा है। ऐसा भगवान ने कहा है। आहाहा! अलक-मलक की बात। यह तो अगम्य-गम्य की बातें! अरे रे! आहाहा! सम्प्रदाय में तो कभी सुनने को मिलता नहीं। आहाहा!

अन्दर भगवान विराजता है। जैन जिनस्वरूप तू है। 'घट-घट अन्तर जिन...' जिन अर्थात् वीतरागस्वरूप ही तू अन्दर है। पर्याय में जो रागादि हैं, वे पर हैं। पूरा द्रव्य तो वीतरागस्वरूप ही है। आहाहा! 'घट-घट अन्तर जिन बसे अरु घट-घट अन्तर जैन।' उस 'जिन' को अन्दर में स्वीकार करे - अनुभव करे, उसका नाम जैन है। जैन कोई अपवास करे, अमुक करे, सूर्यास्त से पूर्व भोजन करे, इसलिए जैन—ऐसा जैन नहीं। आहाहा! भारी कठिन बातें! आहाहा!

निज आत्मा जिसका आश्रय है, ऐसा निश्चय-धर्मध्यान ही... 'ही' एकान्त किया है। कथंचित् यह और कथंचित् व्यवहार, ऐसा नहीं। इससे है और दूसरे से नहीं, यह अनेकान्त है। वे अनेकान्त ऐसा सिद्ध करते हैं कि निश्चय से भी है, व्यवहार से भी है। उपादान से भी है और निमित्त से भी है, इसका नाम अनेकान्त है। यह अनेकान्त नहीं, यह तो एकान्त मिथ्यात्व है। आहाहा! यहाँ तो निश्चय से है और व्यवहार से नहीं। यह आया न ? उसमें कहा था, परन्तु अन्य कोई कारण से नहीं। अन्य कोई कारण से नहीं, इसमें सब आ गया। बाहर के कुछ भी कार्य नहीं। आहाहा! यह वर्षीतप करे और फिर उसे उत्सव मनावे, पाँच-दस लाख खर्च करे अन्त में ढ़ोंग करे। अठ्ठम करे (तब कहे) जरा सिर दुखता है। लोग एकत्रित हों और पूछे... आहाहा! अपवास कठिन है। यह सब लंघन है। आहाहा!

परमानन्दरूपी भगवान आत्मा का स्वभाव और **निश्चय-धर्मध्यान ही सर्व भावों का अभाव करने में समर्थ है, ऐसा कहा है। समस्त परद्रव्यों के परित्यागरूप लक्षण**

से लक्षित... आहाहा! समस्त परद्रव्यों का परित्याग। परित्याग अर्थात् समस्त प्रकार से त्याग। आहाहा! जिसमें देव-गुरु और शास्त्र भी त्याग। आहाहा! परद्रव्य में सब आ गया। **समस्त परद्रव्यों के परित्यागरूप लक्षण से लक्षित...** ऐसे लक्षण से लक्ष्य में लेनेयोग्य **अखण्ड-नित्यनिरावरण—** आहाहा! **सहज-परमपारिणामिकभाव की भावना...** आहाहा! **समस्त परद्रव्यों के परित्यागरूप लक्षण से लक्षित...** ऐसे लक्षण से जाननेयोग्य। लक्षण से लक्षित अर्थात् जाननेयोग्य। **अखण्ड-नित्यनिरावरण—** आहाहा! भगवान अन्दर अखण्ड है, नित्यनिरावरण है। आत्मद्रव्य को आवरण है ही नहीं। वह तो सकल निरावरण प्रभु अन्दर है।

एक समय की पर्याय में राग को अपना माना है, उस राग और स्वभाव के बीच भी सांध है, एक नहीं। मात्र मान्यता खड़ी की है। आहाहा! भगवान आत्मा और राग—दया, दान के विकल्प के बीच सांध है। एक नहीं, परन्तु अनादि से यह एक मानकर भटक रहा है। आहाहा! कैसा अन्तर है? पाँच मिनिट का। यहाँ चार (बजकर) पाँच हुए। अब क्या कहते हैं?

समस्त परद्रव्यों के परित्यागरूप लक्षण से लक्षित... सब परद्रव्य के त्याग में कोई परद्रव्य नहीं, राग नहीं, भगवान नहीं, परमेश्वर नहीं, सिद्ध नहीं, कोई नहीं। आहाहा! **समस्त परद्रव्यों के परित्यागरूप...** परित्याग—समस्त प्रकार से त्याग। अकेला त्याग नहीं। आहाहा! ऐसे **लक्षण से लक्षित...** ऐसे परित्याग के लक्षण से ज्ञात होनेयोग्य, जाननेयोग्य। **अखण्ड-नित्यनिरावरण—** आहाहा! वस्तु स्वयं अखण्ड है, उसमें गुण-गुणी का भेद भी नहीं, ऐसी अखण्ड चीज़ है। आहाहा! अखण्ड नित्यनिरावरण और त्रिकाली निरावरण है। ऐसे भगवान को अन्दर आवरण है ही नहीं। आहाहा! वह तो एक समय की पर्याय में सभी संसार की क्रीड़ा है। वस्तु में आवरण नहीं है। वस्तु में आवरण होवे तो वस्तु, अवस्तु हो जाए। आहाहा! पर्याय में राग होवे तो राग का अभाव होकर शान्ति न रहे। त्रिकाल को आवरण होवे तो द्रव्य ही न रहे। आहाहा!

नित्यनिरावरण। आहाहा! भगवान आत्मा अन्दर नित्यनिरावरण है। **सहज-परमपारिणामिकभाव की भावना...** स्वाभाविक परमपारिणामिकभाव की भावना। उसकी भावना से, उसकी एकाग्रता से **औदयिक,...** कर्म का जो उदय, कर्म का **औपशमिक,...**

कर्म का **क्षायिक तथा...** कर्म का **क्षायोपशमिक इन चार भावान्तरों का...** चार भावान्तरों आहाहा! परम पारिणामिकस्वभाव चिदानन्दस्वरूप के भाव से ये चार भाव भावान्तर हैं— अन्य भाव हैं। आहाहा! **चार भावान्तरों का परिहार करने में...** आहाहा! क्षायिकभाव का परिहार करने में समर्थ है।

मुमुक्षु : आश्रय....

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ आश्रय आत्मा का है न। परमपारिणामिक स्वभाव का आश्रय है। चार पर्याय का आश्रय नहीं। पर्याय आश्रय लेनेयोग्य नहीं है। चाहे तो क्षायिक पर्याय हो। आहाहा! पाँच परमेष्ठी तो आश्रय करने के योग्य नहीं। तेरा क्षायिकभाव, वह भी आश्रय करनेयोग्य नहीं है।

इन **भावान्तरों का परिहार करने में...** उन्हें छोड़ने में। नीचे स्पष्टीकरण किया है। **यहाँ चार भावों के परिहार में क्षायिकभावरूप शुद्ध पर्याय...** क्षायिकभावरूप शुद्ध पर्याय है, उसका **भी परिहार (त्याग) करना कहा है, उसका कारण इसप्रकार है : शुद्धात्मद्रव्य का ही...** अंशी का-त्रिकाली भगवान का... आहाहा! ध्रुव-ध्रुव प्रभु नित्य है, उसका **आलम्बन लेने से क्षायिकभावरूप शुद्धपर्याय प्रगट होती है।** आहाहा! सब बातें बहुत सूक्ष्म। अनजाने व्यक्ति को तो ऐसा लगे यह तो क्या है? ऐसा धर्म? क्षायिकभाव! क्षायिकभाव छोड़ना। अर्थात् कि उसका आश्रय करनेयोग्य नहीं है। आहाहा! क्षायिकभाव पर्याय है, पर्याय का आश्रय करने जाए तो राग होगा। आहाहा!

मुमुक्षु : आप भी बहुत सूक्ष्म कहते हो, वह पकड़ना कठिन पड़ता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कठिन, ऐसा है, भाई! कभी अभ्यास नहीं और अभी यह बात चलती नहीं। सम्प्रदाय में यह बात चलती नहीं। है, खबर है। २१ वर्ष सम्प्रदाय में रहे हैं। २३ वर्ष गृहस्थाश्रम में। २१ वर्ष सम्प्रदाय में। यहाँ ४५ हुए। (इस प्रकार) ९० हुए। ४५ वर्ष की उम्र में आये हैं। ४५ वर्ष यहाँ जंगल में व्यतीत किये। यह ९१वाँ लगा है। ९१वाँ चलता है। वैशाख शुक्ल दो, ९१वाँ वर्ष लगा। आहाहा!

यहाँ चार भावों के परिहार में क्षायिकभावरूप शुद्ध पर्याय का भी परिहार (त्याग) करना कहा है, उसका कारण इसप्रकार है : शुद्धात्मद्रव्य का ही-सामान्य का

ही-आलम्बन लेने से... अंशी अर्थात् द्रव्य वस्तु त्रिकाल। पर्याय भी नहीं। क्षायिक पर्याय भी नहीं। आहाहा! उसके बदले शुभराग से धर्म होगा और धीरे-धीरे होगा, यह तो सब मिथ्यात्व का पोषण है। आहाहा! **शुद्धात्मद्रव्य का ही-सामान्य का ही-आलम्बन लेने से क्षायिकभावरूप शुद्धपर्याय प्रगट होती है। क्षायिकभाव का-शुद्धपर्याय का-विशेष का-आलम्बन करने से क्षायिकभावरूप शुद्धपर्याय कभी प्रगट नहीं होती।** क्षायिकभाव के आश्रय से क्षायिकभाव प्रगट ही नहीं होता। क्षायिकभाव के आश्रय से विकल्प आता है। आहाहा! बहुत कठिन काम। उदय, उपशम, क्षयोपशम तो नहीं, परन्तु क्षायिकभाव जो क्षायिक समकित हुआ... आहाहा! केवलज्ञान क्षायिकभाव से है... आहाहा! परन्तु दूसरे को। स्वयं को नहीं। क्षायिक समकित तो स्वयं को होवे, तो भी उसका आश्रय लेने जाए... आहाहा! ऐसी बात है। ऐसा वीतराग का मार्ग होगा यह? सोनगढ़वालों ने कुछ नया निकाला होगा ऐसा?

मुमुक्षु : नया निकाला नहीं परन्तु दब गया था, वह खुला है।

पूज्य गुरुदेवश्री : था, उसे खुला किया है। आहाहा! बाहर में गड़बड़ उठाते थे। आहाहा!

इसलिए क्षायिकभाव का भी आलम्बन त्याज्य है। क्षायिकभाव जो समकित आदि प्रगट हुआ हो, उसके आश्रय का-अवलम्बन का त्याग है। क्योंकि उसके आश्रय से राग उत्पन्न होता है। उसके आश्रय से नया क्षायिकभाव नहीं होता। **यह जो क्षायिकभाव के आलम्बन का त्याग, उसे यहाँ क्षायिकभाव का त्याग कहा गया है।** अवलम्बन का त्याग, उसे क्षायिकभाव का त्याग कहा है। इस प्रकार क्षायिकभाव का त्याग, क्षायिकभाव तो पर्याय है। क्षायिकभाव तो सिद्ध में भी है। सिद्ध में भी क्षायिकभाव है। पारिणामिकभाव और क्षायिकभाव दो हैं। सिद्ध में नित्य है, वह पारिणामिकभाव है और निर्मल पर्याय जो प्रगट हुई, वह क्षायिकभाव है। परन्तु यहाँ कहते हैं, **क्षायिकभाव का त्याग कहा गया है।** वह उसके अवलम्बन का त्याग है। अवलम्बन का त्याग, उसका नाम त्याग कहा है। आहाहा! नीचे।

यहाँ ऐसा उपदेश दिया है कि—परद्रव्यों का और परभावों का आलम्बन तो दूर रहा,... परद्रव्य का और परभावों... का अवलम्बन तो दूर रहो। **मोक्षार्थी को अपने**

औदयिकभावों का (समस्त शुभाशुभ भावादिक का),... भी अवलम्बन नहीं लेना। आहाहा! **औपशमिकभावों का...** उपशम समकित आदि का अवलम्बन नहीं लेना। **क्षायोपशमिकभावों का (अपूर्ण ज्ञान-दर्शन-चारित्रादि पर्यायों का)...** अवलम्बन नहीं लेना। **तथा क्षायिकभावों का (-क्षायिक सम्यक्त्वादि सर्वथा शुद्ध पर्यायों का) भी आलम्बन छोड़ना...** आहाहा! ऐसा है। **मात्र परमपारिणामिकभाव का—** अकेला त्रिकाली द्रव्यस्वभाव। जिसमें खान पड़ी है, अनन्त गुणों की खान है। अनन्त चित्चमत्कार से भरपूर मात्र शरीरप्रमाण कद देखकर इसे उसकी महिमा नहीं आती। शरीरप्रमाण कद है, इसलिए उसकी महिमा दिखायी नहीं देती, परन्तु उसके अन्तर स्वभाव में तो अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. ज्ञान-दर्शन आदि अनन्त-अनन्त भरा हुआ है। अरूपी है। उसमें रूप नहीं है। आहाहा!

यहाँ क्षायिकभाव का त्याग कहा, उसका अर्थ क्षायिकभाव के अवलम्बन का त्याग। **उसका आलम्बन लेनेवाला भाव ही महाव्रत, समिति, गुप्ति,...** आहाहा! **प्रतिक्रमण, आलोचना, प्रत्याख्यान, प्रायश्चित्त आदि सब कुछ है।** आहाहा! क्या कहा? आत्मा अनन्त गुण का धनी, आनन्दकन्द प्रभु के अवलम्बन में सब है। प्रतिक्रमण यह है... आहाहा! है? **महाव्रत, समिति, गुप्ति, प्रतिक्रमण, आलोचना, प्रत्याख्यान, प्रायश्चित्त आदि सब कुछ है।** आहाहा! **(आत्मस्वरूप का आलम्बन, आत्मस्वरूप का आश्रय,...)** अब इसके एक के विशेषण। भगवान प्रभु निर्मलानन्द अन्दर विराजता है, उसका आश्रय, उसका अवलम्बन, **(आत्मस्वरूप के प्रति सम्मुखता, आत्मस्वरूप के प्रति झुकाव,...)** व्यवहार से झुकाव नहीं, व्यवहार से सम्मुखता नहीं। व्यवहार का आश्रय नहीं और व्यवहार का अवलम्बन नहीं। आहाहा!

(आत्मस्वरूप के प्रति झुकाव,...) आत्मा के प्रति झुकाव। व्यवहार और दूसरी ओर का झुकाव छोड़ देना। आहाहा! ऐसा जैनधर्म। अभी एकेन्द्रिय की दया पालो, यह करो... आहाहा! **(आत्मस्वरूप के प्रति झुकाव, आत्मस्वरूप का ध्यान,...)** सब एक ही कहा जाता है और **(परमपारिणामिकभाव की भावना,...)** यह सब एक ही है। भावना और आश्रय सब एक है। **('मैं ध्रुव शुद्ध आत्मद्रव्यसामान्य हूँ'...)** मैं ध्रुव शुद्ध आत्मद्रव्य सामान्य हूँ। **(ऐसी परिणति-इन सबका एक अर्थ है।)** यहाँ से... क्या?

क्योंकि वह आत्मस्वरूप का अवलम्बन है। अवलम्बन भी एक... उसके **(आत्मस्वरूप का आलम्बन, आत्मस्वरूप का आश्रय, आत्मस्वरूप के प्रति सम्मुखता, आत्मस्वरूप के प्रति झुकाव, आत्मस्वरूप का ध्यान, परमपारिणामिकभाव की भावना, 'मैं ध्रुव शुद्ध आत्मद्रव्यसामान्य हूँ' ऐसी परिणति-इन सबका एक अर्थ है।)** इतने सब बोलों का (एक अर्थ है)। आहाहा! उसमें व्यवहार कब आयेगा? व्यवहार... अनेकान्त कहा जाता है। निश्चय और व्यवहार दो हों, उसे अनेकान्त कहा जाता है। अनेकान्त कहा जाता है, इसका अर्थ निश्चय है और व्यवहार है, वह धर्म नहीं परन्तु व्यवहार है सही। व्यवहार होता है। होता है, तथापि वह आश्रय करनेयोग्य नहीं है। आहाहा! एकान्त हो जाएगा। अकेला आत्मद्रव्य का अवलम्बन, आत्मद्रव्य का आलम्बन, सम्मुखता।

मुमुक्षु : दो का अवलम्बन एक साथ होगा? या आत्मा का होगा और या पर का होगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : दो का नहीं हो सकता। अन्तर्मुख झुकाव हो, उसे बाहर का झुकाव नहीं होता; बाहर का झुकाव हो, उसे अन्तर्मुख झुकाव नहीं होता। एक म्यान में दो तलवारें नहीं रहतीं। जैन में ऐसी बातें! बाहर अनजाने व्यक्ति को (ऐसा लगता है) यह नया मार्ग निकाला है। अपने तो छह काय की दया पालना, व्रत पालना, सूर्यास्त से पहले भोजन करना, रात्रि में आहार नहीं करना, छह परवी ब्रह्मचर्य पालन करना, ऐसा तो कुछ आता नहीं। ऐई! यहाँ तो रात्रिभोजन का त्याग सत्रह वर्ष से है। दुकान-दुकान। रात्रि में खिंचड़ी थी। माल लेने गये थे। माल लेने बाहर गये थे। घर की दुकान। कुछ देरी हो गयी होगी और उसमें खिंचड़ी और क़ढ़ी आयी। मुझे शंका पड़ी कि इस कढ़ी में बारीक जीव पड़े, वे क्यों दिखायी नहीं देते? यह तो पाप होगा। लगभग (संवत्) १९६५-६६ के वर्ष में संवत् १९६५-६६ कहा - आज से मैं रात्रि में नहीं खाऊँगा। मुझे आजीवन त्याग है। एक अथाणा (अचार)। एक बार अथाणा लाये। मैंने कहा, यह अथाणा लाये कहाँ से? जहाँ वरनी में देखने गया तो गन्दा कपड़ा और ऊपर कंथवा। लेने गये हों तो अन्दर कंथवा गिरे। वह अथाणा लावे। आहाहा! वर्ष का अथाणा। वहाँ महिला पकाती हो।....होवे फिर उस वरनी का ढक्कन होवे, ढक्कन ऐसे करके वह कपड़ा-बपड़ा ऐसे हटे तो कपड़े में कंथवा होते हैं, क्योंकि चिकने हाथ लगे हों। वे अन्दर गिरते हैं। नजरों से देखा है। तब से अचार

का आजीवन त्याग है। उसे ७० वर्ष हुए। अचार-बचार नहीं। परन्तु यह तो बाहर की बातें हैं, यह कोई अन्तर की बातें नहीं हैं। आहाहा! यह कोई धर्म नहीं है। यह तो एक शुभभाव है। आहाहा!

चार भावान्तरों का परिहार करने में... इसकी व्याख्या का स्पष्टीकरण किया। परिहार करना अर्थात् क्या? उसका आश्रय नहीं करना। **अति-आसन्नभव्य जीव...** आहाहा! अति नजदीक का (भव्य) जीव। जिसे संसार निकट है, बन्द होने का। आहाहा! अनन्त काल से जो भवभ्रमण कर रहा है, अनन्त भव किये, उस भव का अन्त आना है, उसे यह बात बैठती है। आहाहा! **आसन्नभव्य जीव समर्थ है, इसीलिए उस जीव को पापाटवीपावक...** आहाहा! **(-पापरूपी अटवी को जलानेवाली अग्नि) कहा है;...** आहाहा! भाषा में कितनी... है, देखो!

ऐसा होने से पाँच महाव्रत,... आहाहा! ध्यान, वह महाव्रत है। पर की दया करना, सत्य बोलना, वह महाव्रत नहीं है। आहाहा! महाव्रत तो अन्दर आत्मा में... **ऐसा होने से पाँच महाव्रत, पाँच समिति,...** आहाहा! शरीर के साथ और वह नहीं। यहाँ तो आत्मा के आनन्द में अन्तर एकाग्रता, वह सब महाव्रत और समिति है। आहाहा! **तीन गुप्ति,...** मन-वचन और काया। **प्रत्याख्यान,...** प्रत्याख्यान **प्रायश्चित्त, आलोचना आदि सब ध्यान ही है...** आहाहा! आत्मा के आनन्दस्वरूप का ध्यान। आत्मा का अतीन्द्रिय आनन्द उसका त्रिकाली स्वभाव, उसका ध्यान, वह यह सब है। बाहर के विकल्प उठें, वह सब राग और बन्ध का कारण है।

वह **सब ध्यान ही है (अर्थात् परमपारिणामिक भाव की भावनारूप जो ध्यान...)** ध्यान की व्याख्या की है। परमपारिणामिक जो त्रिकाल भाव। भगवान आत्मा नित्यानन्द नित्यध्रुव, पर्याय से भी भिन्न—ऐसा जो द्रव्यस्वभाव... आहाहा! नित्य स्वभाव की भावना अर्थात् एकाग्रता, वही ध्यान है और वह **(ध्यान, वही महाव्रत प्रायश्चित्तादि सब कुछ है)**। आहाहा! ....अब राग में ....महाव्रत।

आज सवेरे नहीं कहा था? महाव्रत बड़े पुरुषों ने आदर किये हैं। महाव्रत किसे कहें? ....बड़े में बड़ा है, वह महाव्रत है। वह (शुभभावरूप) महाव्रत तो अभव्य ने भी आदरे हैं। अनन्त बार दूसरे... भटककर द्रव्यलिंग धारण करके सबने पंच महाव्रत पालन

किये, नौवें ग्रैवेयक गया है। वहाँ से चार गति में भटका। आहाहा! महाव्रत। यह महाव्रत ऐसा? व्यवहार महाव्रत है या नहीं? है, राग है। छोड़नेयोग्य है। आहाहा! भारी कठिन काम। **(ध्यान वही महाव्रत प्रायश्चित्तादि सब कुछ है)**। आहाहा!

श्लोक-१९०

[अब इस ११९वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं:]

(मंदाक्रांता)

यः शुद्धात्मन्यविचलमनाः शुद्धमात्मानमेकं,
नित्यज्योतिःप्रतिहततमःपुञ्जमाद्यन्तशून्यम्।
ध्यात्वाजस्रं परमकलया सार्धमानन्दमूर्तिं,
जीवन्मुक्तो भवति तरसा सोऽयमाचारराशिः ।।१९०।।

(वीरछन्द)

जिसने नित्य ज्योति के द्वारा तिमिर पुंज का किया विनाश।
आदि-अन्त बिन, परम कलामय आनन्दमूर्ति ज्ञानप्रकाश॥
शुद्धातम में अविचल मन से उसे निरन्तर जो ध्याते।
निकट भव्य चारित्र पुंज वे त्वरित मुक्ति-रमणी वरते॥१९०॥

[श्लोकार्थः] जिसने नित्य ज्योति द्वारा तिमिरपुंज का नाश किया है, जो आदि-अन्त रहित है, जो परम कला सहित है तथा जो आनन्दमूर्ति है—ऐसे एक शुद्ध आत्मा को जो जीव शुद्ध आत्मा में अविचल [१]मनवाला होकर निरन्तर ध्याता है, ऐसा यह [२]आचारराशि जीव शीघ्र जीवन्मुक्त होता है॥१९०॥

---

१. मन=भाव। २. आचारराशि=चारित्रपुंज; चारित्रसमूहरूप।

श्लोक- १९० पर प्रवचन

[अब इस ११९वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैंः]

यः शुद्धात्मन्यविचलमनाः शुद्धमात्मानमेकं,
नित्यज्योतिःप्रतिहततमःपुञ्जमाद्यन्तशून्यम्।
ध्यात्वाजस्रं परमकलया सार्धमानन्दमूर्तिं,
जीवन्मुक्तो भवति तरसा सोऽयमाचारराशिः ।।१९०।।

[श्लोकार्थः] आहाहा! **जिसने नित्य ज्योति द्वारा तिमिरपुंज का नाश किया है,...** भगवान आनन्दमूर्ति के आश्रय से जिसने अज्ञान अन्धकार का नाश किया है। **जो आदि-अन्त रहित है,...** आत्मा है, उसे आदि-अन्त नहीं है। शुरुआत नहीं, नाश नहीं। है, वह है। अनादि-अनन्त विराजता है। **जो परम कला सहित है...** आनन्दादि सोलह कला से भरपूर है। आहाहा! **तथा जो आनन्दमूर्ति है—ऐसे एक शुद्ध आत्मा को जो जीव शुद्ध आत्मा में अविचल मनवाला होकर...** अविचल भाववाला होकर... आहाहा! **निरन्तर ध्याता है, ऐसा यह आचारराशि जीव...** आहाहा! वह आचार का पुंज है। अन्तरवस्तु में लीन हो गया, वह आचार का पुंज है। आहाहा! **आचारराशि जीव शीघ्र जीवन्मुक्त होता है।** लो, वह अल्प काल में उसके संसार का (नाश करके) मोक्ष की प्राप्ति होती है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)